Vol 4 Issue 2 March 2014

ISSN No : 2230-7850

# International Multidisciplinary Research Journal

# *Indian Streams Research Journal*

Executive Editor
Ashok Yakkaldevi

Editor-in-Chief
H.N.Jagtap

**Welcome to ISRJ**

**RNI MAHMUL/2011/38595** **ISSN No.2230-7850**

Indian Streams Research Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial board.Readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

## *International Advisory Board*

Flávio de São Pedro Filho
Federal University of Rondonia, Brazil

Kamani Perera
Regional Center For Strategic Studies, Sri Lanka

Janaki Sinnasamy
Librarian, University of Malaya

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

Titus PopPhD, Partium Christian University, Oradea,Romania

Mohammad Hailat
Dept. of Mathematical Sciences, University of South Carolina Aiken

Abdullah Sabbagh
Engineering Studies, Sydney

Catalina Neculai
University of Coventry, UK

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Fabricio Moraes de Almeida
Federal University of Rondonia, Brazil

George - Calin SERITAN
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences Al. I. Cuza University, Iasi

Hasan Baktir
English Language and Literature Department, Kayseri

Ghayoor Abbas Chotana
Dept of Chemistry, Lahore University of Management Sciences[PK]

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Horia Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest,Romania

Ilie Pintea,
Spiru Haret University, Romania

Xiaohua Yang
PhD, USA

.....More

## *Editorial Board*

Pratap Vyamktrao Naikwade
ASP College Devrukh,Ratnagiri,MS India

R. R. Patil
Head Geology Department Solapur University,Solapur

Rama Bhosale
Prin. and Jt. Director Higher Education, Panvel

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University,Kolhapur

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Chakane Sanjay Dnyaneshwar
Arts, Science & Commerce College, Indapur, Pune

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary,Play India Play,Meerut(U.P.)

Iresh Swami
Ex - VC. Solapur University, Solapur

N.S. Dhaygude
Ex. Prin. Dayanand College, Solapur

Narendra Kadu
Jt. Director Higher Education, Pune

K. M. Bhandarkar
Praful Patel College of Education, Gondia

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

G. P. Patankar
S. D. M. Degree College, Honavar, Karnataka

Maj. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

S.Parvathi Devi
Ph.D.-University of Allahabad

Sonal Singh,
Vikram University, Ujjain

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

R. R. Yalikar
Director Managment Institute, Solapur

Umesh Rajderkar
Head Humanities & Social Science YCMOU,Nashik

S. R. Pandya
Head Education Dept. Mumbai University, Mumbai

Alka Darshan Shrivastava
Shaskiya Snatkottar Mahavidyalaya, Dhar

Rahul Shriram Sudke
Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore

S.KANNAN
Annamalai University,TN

Satish Kumar Kalhotra
Maulana Azad National Urdu University

**Address:-Ashok Yakkaldevi 258/34, Raviwar Peth, Solapur - 413 005 Maharashtra, India**
**Cell : 9595 359 435, Ph No: 02172372010 Email: ayisrj@yahoo.in Website: www.isrj.net**

Indian Streams Research Journal
ISSN 2230-7850
Volume-4 | Issue-2 | March-2014
Available online at www.isrj.net

# "सिन्धुघाटी की संस्कृति में बिचरते हुए देव, दानव और असुर : एक सिंहावलोकन"

**C.S. Somanvanshi ,** *जशवन्तकुमार प्रेमजीभाई चौधरी*

Research Scholare, Ph.D. Recognized Guidel Research Supervisor Author of Three Books History published ISBN Nos.Adipur (Kutch)
श्री.पी.एन. पाण्डेया, M.P. पाण्डेया साइन्स ऐण्ड D.P. पाण्डेया कॉमर्स कॉलेज, सन्तरामपुर रोड, लूनावाड़ा .

***सारांश* :-**सिन्धु घाटी की सभ्यता में देव, सुर और असुर यह तीनों अपने–अपने रूप से स्वतन्त्र घूमते रहते थे। सिन्धु प्रदेश इनका गढ़ था। प्रागैतिहासिक गवेशण के क्षेत्र में स्वर्गीय रायबहादुर मनोरन्जन घोश और कर्नल डी. एच. गार्डन जैसे स्वच्छन्द गवेशकों को अधिक श्रेय प्राप्त है। कर्नल गुहाश्रयों में प्राप्त तथा कथित प्रागैतिहासिक चित्रों के समय को सुदृढ़ आधार पर निर्धारित किया है। दुनिया का सबसे पहले–पहला मानव हिन्दुस्तान में रहता था। सृष्टी की रचना के बाद प्रथम आदिम मानव हिन्दुस्तान के मन्दसौर इलाके में रहता था। शुरु–शुरु में मानव वैज्ञानिकों का मानना था कि आदिम–मानव की उत्पत्ति सबसे पहले अफ्रिका के घने जंगलों के बीच हुआ था, तो दूसरा मत यह भी था कि फ्रान्स में प्रथम आदिम–मानव हुआ था, ऐसा वैज्ञानिकों का दावा था, किन्तु अब यह मत अस्वीकृत हो गया है। अब यह प्रमाणित हो चुका है कि "दुनिया का सबसे महिला आदिम–मानव आज से 5 लाख वर्ष पूर्व (5,00,000 वर्ष) मध्य–प्रदेश जो कि भारत वर्ष का हृदय स्थल माना जाता है यहाँ के मन्दौर जिले की एक 'पहाड़ी गुफा' में रहता था। इससे पहले आदिम–मानव फ्रान्स की 'स्वेत की पुरानी गुफा' में रहता था।

***प्रस्तावना :***

फ्रान्स की यह 'स्वेत की पुरानी गुफा' मात्र 3,8000 वर्ष ही पुरानी मानी जाती है। जब कि मध्य प्रदेश के हृदय स्थल मन्दसौर की पहाड़ी गुफा 70,00,000 (सत्तर लाख वर्ष)। इसी गुफा में सबसे महिला आदिम मानव पाया गया था।" प्रागैतिहासिक काल क्रम को सिन्धु घाटी की सभ्यता पर भी इन लोगों ने अपनी–अपनी लेखनी चलायी है। प्रो. डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी महोदय मानता है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम् सभ्यताओं में से एक है। (Opinion is gaining ground that Indus Valley Civilization was the earliest Civilization in the World) सिन्धु घाटी की खुदाई में मृतकों का अग्नि–संस्कार भी करते थे। श्री पद्मिनी सेनगुप्त ने लिखा है कि सिन्धु घाटी के लोगों के मनोरन्जन के खेल में जुआ खेलना एक साधन था, क्योंकि खुदाई में विभिन्न प्रकार के पासे प्राप्त हुए हैं। Gambling was obviously a favouite amusement and various kinds of dice have been found……) सिन्धु घाटी के लोगों का मुख्य भोजन 'गेहूँ, 'जौ' एवं 'चावल' था। धान कूटने की 'ओखाली' तथा खजूरी की 'गुठली' प्राप्त होने से 'चावल' तथा 'फलों' के प्रयोग की पुष्टि होती है। श्री पद्मिनी सेनगुप्त ने ठीक ही लिखा है कि "सिन्धु घाटी में निवास करने वाली जाति के लोग श्रेष्ठ, सभ्य एवं सुसंस्कृत वाले थे। उन्होंने रहने के लिए स्वच्छ एवं हवादार मकानों का निर्माण कराया था तथा ऐसे सुव्यवस्थित समाज की रचना की थी जिसका प्रशासन उच्च कोटि एवं ठोस वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर ही आधारित था। (The Race that dwelt in the Indus Valley, therefore, was a highly civilized and Cultured people …….. They made healthy and happy homes for theselves and organized a settled society with a sound Adminstration.)

हड़प्पन संस्कृति की ई. सन् 1921 में श्री दयाराम सहानी ने खोज की, तथा हड़प्पा माँट गोमरी जिला पंजाब जो अब पश्चिमी प्रांत पाकिस्तान में है। मोहनजोदड़ो नामक स्थल लड़काना जिले में है जो अब सिंध प्रांत पाकिस्तान में है। डॉ. राखाल दास बनर्जी ने ई. सन्, 1922 में इसकी खोज की। सुर कागेडोर बल्लूचिस्तान पाकिस्तान आर्यल स्टाइल जॉन बोल्स ने सन् 1927 ई. में खोज की। तथा चहुन्दड़ो मोहनजोदड़ो के दक्षिण सिंध प्रांत में है इसकी ई. सन् 1931, 1935 में डॉ. मैले महोदय और प्रो. एन. जे. मंजूदार ने की। रंगपुर गुजरात में, अहमदाबाद जिले मादर नदी के तट पर स्थित है। इसकी खोज ई. सन् 1931 में डॉ. एम. एस. बिष्स ने की। सुरकोटड़ा कच्छ प्रांत में है इसकी खोज 1972 में श्री जगपती जोशी ने की तथा धोलीवीरा की खोज डॉ. रविन्द्र सिंह विष्ठ और श्री जगपती जोशी ने ई. सन् 1990–1991 में की। इसका सर्वेक्षण डॉ. चन्द्रिकासिंह सोमवंशी और प्रो. बी. वी. सोलंकी ने 'यू.जी.सी.' के अनुदान पर प्राप्त 'टीचर फेलोशीप' के दौरान, धोलावीरा के दौरान किया था।

सिन्धु नदी की विशाल घाटी में ही इन सभ्यताओं का जन्म हुआ था। सन् 1921 ई. में श्री दयाराम साहनी ने मोन्टोगोमरी जिले में स्थित हड़प्पा नामक जगह पर खुदाई कार्य कराके इस सभ्यता को उजागर किया था। ठीक इसी तरह डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी की अध्यक्षता में सन् 1922 ई. में सिन्ध प्रान्त के लरकाना जिले में जो कि पाकिस्तान–कराची शहेर से 300 मील उत्तर दिशा में स्थित मोहेनजोदड़ो (जिसे कि हम 'मुर्दो का टीला' भी कह सकते हैं) नामक स्थान पर उत्खनन कार्य करा के इस सभ्यता का पता लगाया था। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा दोनों स्थानों की पारज्ञपारिक दूरी 650 कि.मी. है। आद्यैतिहासिक काल के शिल्प–विधान की चर्चा करें तो सिन्धु संस्कृति के प्राचीनत् अवशेष, सर्वप्रथम हड़प्पा नामक स्थल से ही प्राप्त हुए थे। प्राचीन भारत की शिल्प–कला का कार्य लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी मानी गयी है। हड़प्पा से प्राप्त धातु–शिल्पों में नृत्य करती स्त्री का शिल्प मनोहारी है। हड़प्पा में से प्राप्त सील (मुद्रा) में असंख्य प्राणियों की आकृतियों भी मिलती हैं। वृषभ (बैल–साँड) जो कि 'कबूडदार' है बेजोड नमूना है जो कि देखते बनता है। कच्छ–गुजरात में रंगपुर, रोजड़ी, सुरकोटड़ा, कानमेर, कुरून, नेत्रा और धोलावीरा में से प्राप्त हुए हैं। सिन्धु घाटी से पुरातात्विक सामग्री तो काफी अधिक मिली है परन्तु यहाँ से प्राप्त अभिलेखों (उत्कीर्ण लेखों, मुद्राओं आदि पर) पर जो अक्षर अंकित हैं उनको पढ़ पाना अभी तक सम्भव नहीं हुआ है। सिन्धु लिपि अज्ञात है। 'सिन्धु घाटी की संस्कृति काँस्ययुग' की थी। घरेलु छूरी और औज़ारों के रूप में अब भी 'चर्ट–पत्थर' के बढियाँ फलकों का इस्तेमाल होता था। मोहेंजोदड़ो के विशालतम् स्नानागार का विन्यासी करण एकदम उच्चकोटि का था, जो कि शायद ही कोई सभ्यता में देखने को मिलती हो, चित्र से स्पष्ट हो जायेगा।

अब हम सिन्धु–घाटी में प्रब्रजन पर चर्चा करते हुए सिन्धु–घाटी में स्थित उस पाताल में लौटते है जो कि भारतभूमि में आसुरों का सर्वप्रथम शरण–स्थल के रूप में माना जाता था। कतिपय कुछ यूनानी लेखकों ने इस घाटी को विशेषतया उस भाग को जिसे हम सिन्ध कहते हैं (पालेने), मुख्य केन्द्र पाताल था। प्रसिद्ध इतिहासकार बी.ए. स्मिथ विन्सेन्ट ने 'पाताल' की पहचान 'ब्रह्मनाबाद' से की है। यूनानी इतिहासकार एरियन का हवाला देते हुए रगोजिन ने 'पाताल की पहचान 'हैदराबाद' से की है। सिन्ध–डेल्टा के प्रत्येक प्रदेश का विस्तार से विवेचन करने के बाद डॉ. कर्निधम जो कि एक इतिहासवेत्ता थे। इस नतींजे पर पहुँचा कि "प्राचीन पाताल" की एक रूपता हैदराबाद के साथ स्थापित करने के बहुत दृढ़ आधार उपलब्ध है। इस प्रकार देवताओं के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक आश्रय लेने तक खदेडे जाने के बाद असरों ने सिन्धु–घाटी में पहुँच कर चैन की साँस ली। यहीं पर रहते हुए ही उन्होंने एक महान् सभ्यता की नींव डाली, जिसे हम 'हडप्पा–सभ्यता' के नाम से जानते हैं जो अब पाकिस्तान में चला गया है। 'हड़प्पा सभ्यता' के जनक द्रविण लोग थे। किन्तु पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र जी ने 'हड़प्पा–सभ्यता' के जनक असुर लोगों को ही माना है। 'सैन्धव–लिपि' का ठीक तरह से पाठ–निर्धारण न होने के कारण इतनी बड़ी समस्या के बारे में इतने अधिक मत स्थापित हो चुके हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में किसी भी एक मत पुष्टि कर पाना कठिन कार्य रहा है। सिन्धु–सभ्यता के निर्माण में द्रविड़ लोगों के कनिष्ठ सकर्मी 'मुंड़ा' जाति के लोग थे। बैड्डेल ने सुमेरी लोगों का पक्ष ग्रहण करते हुए उन्हें 'लुप्त आर्यों' की संज्ञा प्रदान की है। वे आगे कहते है कि हिन्द–आर्यों के पूर्वजों का देश सुमेर था। काफी विद्वानों की धारणा रही है कि सुमेरी लोग द्रविड़–जनों की एक शाखा थे। कुछ विद्वान तो नागों को सैन्धव सभ्यता के जन्मदाता के रूप में मानते हैं। विद्वानों के एक दल का मानना है कि द्रविड़–लोग ही उक्त सभ्यता के जन्म दाता के रूप में मानते है। किन्तु दूसरे विद्वान–दलों का मानना है कि आर्य लोग ही सिन्धु–नदी की घाटी में बसा हुआ 'हडप्पा–सभ्यता' क`जनक आर्य लोग थे। ऊपर वर्णित मतों का गहन अध्ययन करने के बाद मैं. प्रो. डॉ. चन्द्रिकासिंह सोमवंशी, रिसर्च स्कॉलर, अपने मत की पुष्टि में "पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र क`मत को ही श्रेष्ठ माना है। इतिहास–पुरातत्व के और तमाम ग्रन्थों के अध्ययन एवं मनन करने के बाद मैं पं. मित्र जी के मत से काफी सहमत हुआ हूँ।" 'ताड्यब्राह्मण' के अनुसार देव और असुर दोनों ही प्रजापति के पुत्र थे – 'देवाश्च व असुराश्च प्रजापतेर्द्वय पुत्राः आसन।' देवलोक के शासक 'देव' कहलाते थे। पुराणों में कहा गया है कि देव और असुर भाई–भाई हैं। जब आदित्यगण शक्तिशाली हो गये तब उन्होंने अपने पैतृक राज्य में अपना कुछ भाग माँगा। किन्तु असुरों ने यह माँग अस्वीकार कर दी, जिससे संघर्ष शुरू हो गया और अन्त में इन्हें 'देवासुर–संग्राम' के नाम से जाना गया। अनुश्रुति के अनुसार देवासुर संग्रामों में देवताओं के विरूद्ध दैत्यों और दानवों ने मिल कर अपनी सेनाओं को संगठित किया और भंयकर दावानल की लपटों 'देवासुर संग्राम' में अपने को झोंक दिया। कश्यप ऋषि ने दक्ष नामक अन्य प्रजापति की कई पुत्रियों से विवाह भी किये थे। उनकी तीन मुख्य पत्नियों 'दिति','अदिति' और 'दनु' थीं। (1) 'दिति' नामक पत्नी से दैत्यों की उत्पत्ति हुई। (2) 'दनु' नामक पत्नी से दानव लोगों की उत्पत्ति हुई और (3) 'अदिति' आदित्यों माता बनी, जिन्हें परवर्त्ती युगों में बौदिक आर्यों ने वास्तविक देवता के रूप में पूजा। सबसे बड़ी सन्तान दैत्यों तथा कनिष्ठ दानवों के बीच मित्रता पूर्ण संबंध विकसित होते चले गये। 20वीं शती के तीसरे दशक में श्री ए. बैनर्जी शास्त्री ने सम्पूर्ण भारतीय परम्परा में देवों के साथ असुरों का संबंध प्राप्त होने के बावजूद असुरों की एकरूपता असीरियन लोगों के साथ स्थापित करने की चेष्ठा की है। हम आपको यह बता दें कि असुरों तथा देवों के एक ही मूल जनक प्रजापति कश्यप ही थे। देवलोक में विभिन्न जनों में बराबर पारस्परिक मिश्रण होता रहता था। देवराज इन्द्र ने पुलिमत् दानव की पुत्री पौलामी से विवाह किया। पौलामी के पुत्र भृगु ऋषि ने हिरण्यकशिपु की पत्नी से विवाह किया था। भृगु ऋषि के वंशज त्वष्ट्रा ने दैत्य प्रहलाद की पुत्री से अपना विवाह किया। त्वष्ट्रा ने स्वयं अपनी 'पुत्री शरण्य' का परिणय–सम्बन्ध 'देव विवस्वत्' के साथ किया। उन दोनों से 'मनु' एवं 'यम' की उत्पत्ति हुई। चन्द्रवंश के शासक ययाति ने शर्मिष्ठा के साथ विवाह किया, जो कि असुर वृषपर्वा की पुत्री थी। वे लोग दैत्यों की माता दिति के पुत्र थे। डॉ. बुद्ध प्रकाश ने अपने ग्रन्थ में यह सुझाव दिया है कि 'इन्द्र' तथा 'बृत्र' दोनों भाई थे। वे दोनों ही प्रजापति त्वष्ट्रा के पुत्र थे। पुरातत्व विद्वानों का मानना है कि उक्त सभी क्षेत्रों के निवासी एक ही जन–समूह अथवा सम्बन्धित वर्ग के तथा उनकी एक ही संस्कृति थी, जिसका पूर्ण विस्तार 'सिन्धु घाटी' में ही विकसित रूप से प्रतिफलित हुआ। देवलोक में समान धर्म समान धर्म –विधियाँ तथा विचार–धाराएँ प्रचलित जान पड़ती हैं। पुरोहितों में भार्गव सबसे आगे थे। कवि 'उशना' असुरों के पुरोहित थे। उनके पुत्र 'शंड' और 'मर्क' भी असुर पुरोहित थे। यद्यपि बाद में वे देवों के पुरोहित बन गये। त्वष्ट्रा का पुत्र भार्गव विश्वरूप था। उसने देवों का पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया, परन्तु गुप्त रूप से चोरी–छिपे असुरों की सहायता करता था। इस कपट–पूर्ण नीति के कारण इन्द्र ने भार्गव का खून कर दिया। जिससे त्वष्ट्रा अधिक क्रुध हो गया। उसने इन्द्र से बदला लेने के लिए बृत्र को उत्पन्न किया। इस प्रकार देवासुर संग्राम तथा असुरों का सिन्धुघाटी में प्रव्रजन शुरू हुआ था। असिरिया का राजा असुर बनीपाल एक शक्तिशाली सम्राट था, जो कि असुरों के खान–दान से सम्बन्धित रहा हो गा। यही एक कारण है जो कि उसके नाम से पहले असुर बनीपाल आया है।

'शतपत ब्राह्मण' नामक ग्रन्थ के अनुसार प्रजापति 'सोम' व 'अग्नि' यह दोनों वृत के आज्ञापालन को शिरोधार्य समझते थे। इन्द्र, सोम

व अग्नि का विशेष से पूजा करता था कि वृत्त का साथ छोड़ कर मेरी तरफ आ जाएँ। पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र ने अपने ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में लिखते हैं कि "प्रतिदिन प्रातः काल देवता लोग वृत्त को भेंट चढ़ाते थे, मानव लोग दुपहर के समय में और पितृ लोग अपराह के समय में पूजा–पाठ करते थे। सुमेर के प्राचीन इतिहास में इनका काफी विवरण मिलता है। इन्द्र ने जब वैदिक ऋषियों की सहायता से वृत्त को मारा, तो वह चूंकि ब्राह्मण था; अतः उसे ब्रह्महत्या का पाप लगा। पं. द्वारिका प्रसाद ने राजा नहुष के समकालीन बृत्र व इन्द्र को माना है। डॉ. बुद्ध प्रकाश ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि बृत्र व इन्द्र दोनों भाई थे। लेकिन मेरे मतानुसार "मुझे बृत्र व इन्द्र दोनों को भाई–भाई होना मन्जूर नहीं है जबकि तथ्य यह कह रहे हैं कि इन्द्र ने ब्राह्मण का खून किया था, तो उसे उसी का ब्रह्महत्या का पाप लगा हुआ था। अतः बुद्ध प्रकाश के मत को हम संशय भरी नज़रों से देखने को विवश होते हैं। वे दानों कभी भी एक ही पिता की सन्तान नहीं हो सकते थे।"

आर्यो के मूल स्वदेश के निवासी जातीय, सामाजिक तथा धार्मिक बन्धनों से आपस में बंधे हुए थे और उनकी एक ही संस्कृती थी। यह वही संस्कृति थी जो असुरों द्वारा सिन्धु घाटी में लायी गयी थी और जिसकी नींव पर उन्होंने उस सभ्यता का निर्माण किया। इस बात को लेकर इतिहास के विद्वानों में काफी विवाद उठ खड़ा हुआ। असुरों की एक ही संस्कृति थी, जिसका पूर्ण विस्तार सिन्धु घाटी में प्रतिफलित हुआ। 'अमरकोश' तथा 'भागवत पुराण' में एक ही पितृत्व वाले 'देव', 'असुर', 'पितृ, 'यक्ष', 'राक्षस', 'गन्धर्व' इत्यादि जनों की सूची मिलती है विद्वानों एवं पुरातत्ववेत्ताओं ने यह बात कबूल कर ली है कि परम्परा से चले आ रहे मान्यता के अनुसार उस समय मध्य एशिया के जन जहाँ से असुरों का स्थानांतरण हुआ था, मिश्रित वर्ग वाले थे। प्रो. राहुल सांस्कृत्यायन ने लिखा है कि मैं अपने रूस के प्रवास के दौरान रूसी पुरातत्वज्ञों से काफी प्रभावित हुआ। उनके अनुसार 'मुंडा' तथा 'द्रविण' जन यह दोनों 'शक–आर्य विजयों के फलस्वरूप अपने मूल स्थान छोड़ने पड़े। मुंडा–द्रविड जाति कहने की अपेक्षा उन्हें नव पाषाणयुगीन मध्य एशिया की किन्नों–द्रविण जाति का कहना अधिक तर्क संगत माना है। यह बात सबको मालूम है कि सीथियन लोग, जिन्हें संस्कृति में "शक" तथा यूनानी भाषा में "सकयि" माना जाता है, वर्णसंकटजन के थे। ऐसा आभास होता है कि वे घुमक्कड़ आर्यो की एक शाखा थे। कालान्तर में उनकी धमनियों में मंगोल रक्त मिश्ररित होकर बहने लगा। वे मंगोलों के निकटतम् पड़ोसी थे। दूसरी बात यह थी कि परवर्त्ती युगों में वे मंगोलों द्वारा विजित किये गये। पं. द्वारिका प्रसाद के मतानुसार मध्य एशिया के शकों का वर्णन करते हुए वे लिखते है कि बैक्ट्रिया तथा भारत की ओर 'सकइ' के दक्षिणी अभियान में सक्रिय रूप से भाग लिया। वे लोग जनि दरिया–घाटी (रूसी पुरातत्ववेत्ता, टॉल्सटॉब ने अपने एक लेख में मध्य एशिया के शकों के बारें में चर्चा करते हुए 'आमू दरिया' और 'सर दरिया' की तरफ प्रकाश डाला है।) के उपनिवासी, कुवन दरिया घाटी के तुखारी, कुवन दरिया तथा सरदरिया के मध्य की निचली घाटी के 'औगसि' तथा इनकर दरिया की उपरली घाटी के सकरवकि लोग थे। स्ट्रावो' 11,6,6–7 के अनुसार यह विस्तृत क्षेत्र मिलेटस के हेकाटियस के आधार पर लिखे गये स्ट्राबों के भौगोलिक विवरण का सजीव स्मरण कराता है, जहाँ 'मस्सग' लोग नदियों द्वारा निर्मित पंकिल क्षेत्रों में अथवा कंपिल क्षेत्रों के इन द्वीपों में निवास करते थे।

असुर–शासक विरोचन तथा बलि के सन्दर्भ में प्रो. नन्दलाल डे ने अच्छा वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस तर्क में पुराणों तथा महाभारत के आधार स्तम्भ का सहारा लेते हुए लिखते हैं कि "पाताल यद्यपि एक सामान्य नाम है तथापि यह नाम एफ–थलाइट या श्वेत–हूणों से उदभुत है। ये हूण उत्तर के काले हूणों से भिन्न श्वेत कहलाते थे। 'रसातल' या फिर 'पाताल लोक' में 'दानव' लोग रहते थे जो इरानी थे। इस विषय में प्रो. डॉ. मोदी जे. जे. का सारगर्भित शोध–पत्र देखने लायक है। कैस्पियन सागर का क्लासिकल नाम "मेअर–कैस्पियन" या फिर 'हिरकनम' था। दैत्यहिरण्यकशिपु (कश्यप का पुत्र) के नाम के दो शब्दों से उक्त नामों की उत्पत्ति हुई। कैस्पियन सागर के दक्षिण–पूर्व में 'एस्टराबाद' नामक आधुनिक नगर का समीपवर्ती प्राचीन नगर 'हिरकेनिया' उसकी राजधानी रही हो गी। इसका प्राचीन नाम 'हिरण्यपुर' था। हिरण्यकशिपु दैत्यों का आदि सम्राट था। इसी के नाम से 'क्षीरसागर' को कशिपुसागर अर्थात 'कैस्पियनसागर' के नाम से जाना जाता रहा है। वरूण कशियपु के राजपुरोहित थे। दानवों में दानवमर्क ने वर्तमान 'डेनमार्क देश' बसाया और 'षण्डदानव' ने 'स्केन्डेनिविया देश' बसाया जो कालकेय दैत्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश 'डच' (Dutch) हुआ। 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश 'टीटन' भी है। (ख) परम्परा के अनुसार यह नगर चूंकि भारत में था। वलि का प्रासाद सुतल या ट्रांसकैस्पियन जनपद में था। इनमें से कश्यप उक्त समूहों का जनक था। दानवों, गायों तथा सर्पों के साथ न रह सकने वाले गरूड आदि पक्षियों के साथ पाताल के सम्बन्ध की भावना ने इसके अनेक विभिन्न तलों को जन्म दिया। भूमिगत नामों के साथ पाताल का सम्बन्ध इस विचार का जनक हुआ कि पृथ्वीतल के छिद्रों द्वारा भूमिगत मार्गों से पाताल लोक में प्रवेश किया जा सकता है। कश्यपि को प्रजापतियों का अग्रणी माना गया है। वह मारीचि का पुत्र था। ऐसा माना जाता है कि उसकी उत्पत्ति उस समय हुई जब उसके पिता जल में तपस्या–मग्न थे। इस कश्यम ने दक्ष प्रजापति की कई पुत्रियों से विवाह किया था। उसकी पटरानियों में मुख्य तीन पटरानियों थीं (1) दिति (2) अदिति और (3) दनु। दिति से दैत्य, दनु से दानव और अदिति से आदित्य। डॉ. बुद्धप्रकाश कैष्प्यिन (कैस्पियन) तथा अराल सागर कुरूक्षेत्र तक के एक विशाल विस्तृत भू भाग में फैली हुई अनेक जातियों का नामोल्लेख करने के बाद उन्होंने लिखा है कि "यहाँ आर्य भाषा की अनेक बोलियाँ बोलने वालों की बहुसंख्यक जातियाँ रहती थीं, उनमें संस्कृतिक उत्थान की लग्न थी। ग्रामीण बस्तियाँ नगरों के रूप में विकसित हुई और उनमें केन्द्रिय महानगरिय विशेषताएँ लक्षित होती चली गयीं। आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास की यह प्रक्रिया सिन्धुघाटी सभ्यता के चरम उत्कर्ष के रूप में प्रतिफलित हुई। श्री जक्वेटा हॉक्स महोदय तो यहाँ तक भी लिखता है कि जो लोग नवपाषाण युग का प्रारम्भ दक्षिण–पश्चिम एशिया में मानते हैं उनका विश्वास है कि मूल केन्द्रो का विस्तार 'अनातोलिया की ऊँची भूमि में' तथा उसके आगे ईरानी पठार कैस्पियन घाटी तथा उसके उपवर्ती भाग (ट्रान्स–कैस्पियन) एवं बलूचिस्तान और मध्य अरब क्षेत्र तक में फैला था।

क्वेटा के समीप एक स्थल में वर्त्तन–निर्माण कला के पूर्ण नव–पाषाण काल बस्ती के आबाद होने के प्रमाण मिले हैं। झोब घाटी के अन्य स्थल पर अर्ध–सभ्य लोगों की प्राचीनतम् वस्तियाँ मिलीं हैं। ये लोग घोड़े, गधे, कूबड़दार बैल, भेड़ पालते थे। बहुसंख्यक स्थलों में सुन्दर–सुन्दर चित्रों से युक्त मिट्टी के बर्त्तन मिले हैं, जो कि भारतीय कि भारतीय किसानों तथा ईरान और ईराक के किसानों के बीच की कड़ी को उजागर करते हैं। पूर्वी ईरान, विशेषतः हिसार के साथ अधिक घनिष्ठ सम्बन्धों की जानकारी हुई है। सिन्धु–सभ्यता पर सुमेरी सभ्यता का प्रारम्भिक तथा उत्तरी और मध्यवर्ती बलूचिस्तान के अनेक स्थानों की खुदाई हो चुकी है। इनमें से मुंडीगक, क्वेटा, लोरालाइ (राना घुंडई) एवं कलात (अंजीरा) उल्लेखनीय है। सिन्धु घाटी के निवासियों को असुरों के मूल निवास मध्य एशिया के साथ जोड़ने में हमें प्रो. स्टुअर्ट पिगट के विचार को देखना चाहिए, उनके अनुसार मिस्र में प्राप्त अवशेषों में छह वालों वाले "जौ" नामक अनाज की प्राप्ति का होना प्रागैतिहासिक काल

के भारत वर्ष में मिली है। मिस्र में कई प्रकार की जंगली घासें भी मिली हैं, जिससे अनाज (अन्न) के दाने पैदा होते थे। ऐसी घासें अभी भी तुर्किस्तान, ईरान तथा उत्तरी अफ़गानिस्तान में उगती हैं। "रोटी वाले गेहूँ" में 21 (इक्कीस) गुण सूत्र पाये जाते हैं, जबकि गेहूँ के अन्य दो प्रकारों में क्रमशः 14 (चौदह) और 7 (सात) गुण सूत्र उपलब्ध हैं। 21 गुण सूत्रों वाले गेहूँ के प्राचीन जंगली रूप प्राप्त नहीं हुए हैं। उगाये जाने वाले गेहूँ के अत्यन्त प्राचीन प्रकारों की खेती आज ईरान, अफ़गानिस्तान, बोखरा के चारों ओर के क्षेत्र में, काश्मीर तथा पश्चिमी भारत में होती है। इस बात के मानने के प्रमाण है कि गेहूँ के "स्फैरोकोकम" तथा "कम्पैक्टम" प्रकार, रोटी वाले गेहूँ के सबसे प्राचीन रूप है। रोटी वाला गेहूँ मूलतः अफ़गानिस्तान के हिमालयवर्ती किनारों पर उत्पन्न हुआ। अन्य विद्वान गेहूँ की प्रारम्भिक उत्पत्ति 'जगरोस पर्वत–श्रृंखला' तथा 'कैस्पियन' के बीच वाले क्षेत्र में मानते हैं। तुर्किस्तान के अनाउ (प्रथम काल) से प्राप्त वर्त्तानों के टुकड़ों में "ट्रिटिकम बल्गेरी" प्रकार वाले गेहूँ के दानों के चिन्ह प्राप्त हुए हैं। पश्चिम भारत से अनतिदूर क्षेत्रों में रोटी वाले गेहूँ की प्रारम्भिक उपज होती थी। हड़प्पा–संस्कृति में प्राप्त प्रमाणों से यह स्पष्ट प्रकट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी सहस्त्राब्दी में वहाँ रोटी वाला गेहूँ उपजाया जाता था।

हड़प्पा सभ्यता के लोग जानवरों को पालतू बनाने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी। इस सम्बन्ध में हम प्रो. पिगट के विचाों को उदृघृत करते हैं। उनके अनुसार "एक कूबड़ वाले भारतीय किस्म के ऊँट जानवर की कुछ हड्डियाँ मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा सभ्यता में मिली हैं। वैसी हड्डियाँ तुर्किस्तान में अनाउ स्थान में तथा दक्षिणी रूस की नव–पाषाण युगीन ट्रिपोली संस्कृति में भी मिली थी। दोनों स्थलों से प्राप्त अवशेष हड़प्पा–सभ्यता के अवशेषों के प्रायः समकालीन है। पालतु गधों एवं घोड़ो के अवशेष भी मिले हैं। उत्तरी बलूचिस्तान में रानाघुंडई स्थान के प्रथम निवासियों को घोड़े का ज्ञान था। उत्खनन में उपलब्ध अवशेष आधुनिक भारत के ग्रामीण पालतु घोड़े के समानता की ओर इशारा करते हैं। घोड़ा कम से कम मेसोपाटामिया का मूल पशु नहीं है। सम्भवतः उसे ईरान–पठार के पर्वतों अथवा तुर्किस्तान से लाया गया था। वैसे हम आप को यह बता दें कि ईरानी नस्ल के घोड़ें बहुत ही अच्छे होते हैं और दौड़ने में खूब तेज़ भागते हैं। ये दोनों क्षेत्र बलूचिस्तान के साथ मिल कर एक सामान्य भौगोलिक क्षेत्र का निर्माण करते थे, जहाँ घोड़ो के पालने का प्राचीनतम् प्रमाण मिलता है। संस्कृत–क्रम लगभग चार हजार ईस्वी पूर्व में ताम्रश्मयुग से प्रारम्भ हुआ और फिर लौह काल के प्रारम्भ, लगभग 1000 ई. (एक हजार ईस्वी) तक लगातार जारी रहा। हड़प्पा के मिट्टी के छोटे बर्त्तन अपना विशेष महत्व रखते हैं। हड़प्पा–संस्कृति में लाल रंगे हुए बर्त्तन विशेष महत्व रखते हैं। मोहोनजोदड़ो से सीधे हत्थे वाली ताँबें की 'कड़ाही' मिली है उससे मिलती जुलती कड़ाही 'आल्तिनदेपे' से प्राप्त हुई है। हाल ही में आल्तिन–देपे में पुरातात्विक उत्खनन से कुछ वस्तुएँ मिली हैं। आल्तिन–देपे में ठोस पहियों वाली मिट्टी की गाड़ियाँ तथा एक पशुयुक्त गाड़ी भी मिली है। ये हड़प्पा–संस्कृति के मृच्छ–कटिकों से बड़ी ही समानता रखती है। धुरी की खूटियाँ भी एक जैसी है। मिट्टी की इन गाड़ियों के अतिरिक्त मध्य एशिश में तीन नग्न परुष आकृतियाँ भी मिली हैं, जिनमें एक उदाहरण 'आल्तिन–देपे' से प्राप्त हुई हैं। हड़प्पा–सभ्यता से उपलब्ध ऐसी आकृतियों से इनका गहरा सम्बन्ध है और काफी समानता भी है, उसी प्रकार मोहनजोदड़ो से सेलखड़ी तथा पकी मिट्टी के बने हुए प्रसाधन–करंड भी मिले हैं, जिन पर विभिन्न वस्तुओं को रखने के लिए विभिन्न खाने भी बने हुए है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त सुगठित बैल (साँड) की आकृति (वृषभ आकृति) बेमिसाल है। हड़प्पा के जनक अनार्य थे। हमारी मान्यता अनुसार भी यह एक रूपता आश्चर्यजनक नहीं, क्योंकि असुर लोग स्वयं आर्य थे। भारतवर्ष में असुर आर्यों से बहुत पहले पहुँचे थे। ऋग्वेद सहित वैदिक वाङगमय के "असुर" शब्द बहुत मिलता है। आग्र अधिकांशतः ग्रामीण थे। वे नगर स्पाथन योजना में निपुण नहीं थे। दूसरी तरफ सिन्धु घाटी की सभ्यता नगरीय थी। सिन्धु घाटी के लोग नगर–स्थापन की योजना में काफी निपुण थे और उनकी नाली व्यवस्था तो एक दम सराहनीय थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता वैदिक सभ्यता से भिन्न तथा प्राचीन थी उन्हें घाड़ो का कोई शान नहीं था, किन्तु बैलों (साँडो–वृषभ) की पूजा करते थे।

अस्पष्टा प्राचीनता के पूर्व–ऐतिहासिक भूगर्भ की गोद में ही इतिहास की जड़ों की नीवं निहित है। मनुष्य (मानव) ने अपना जीवन बर्बता की अवस्था से प्रारम्भ किया। उसके समीपवर्ती पूर्वज सम्भवतः लँगूर की आकृति के ही थे। कुछ विद्वानों का मानना है कि लँगूरों से पहले बनमानुष का साकार रूप था। आर्य लोग गौ–माता की पूजा करते थे किन्तु सिन्धु सभ्यता वाले बैल की पूजा करते थे। सैन्धव–सभ्यता शहरी थी। फलतः मिस्त्र, मेसोवोटामिया और सिन्धु घाटी में ही नयी विकसित मानव सभ्यता का उदय हुआ था। धातु–युग मानव–सभ्यता के विकास–क्रम सुर्योदय काल था। डॉ. (प्रो.) सी. एस. सोमवंशी रिसर्च स्कॉलर, के शब्दों में "पाषाण–काल को ही मानव–सभ्यता के विकास–क्रम का पहला क्रान्तिकारी सोपान माना जाता है। मनुष्य में मनुष्यता और विवेक की जागृति इसी काल में ही हुई। जंगली जीवन से मानव, नगर और ग्राम्य–जीवन की ओर उन्मुख हुआ। नैतिकता का ज्ञान उसे इसी पाषाण–काल में ही हो चुका था।" श्री रामगोपाल भण्डारकर का विचार यह है कि "ब्राह्मण ग्रन्थों में 'असुर' शब्द उस जन–जाति का बोधक है जो देवों की विरोधी थी। बृत्र को असुर, दास और अहि कहा गया है। श्री आर. ओझा के मतानुसार "शुष्न के एक बच्चा था, वह फुफकारता था तथा अर्बुद, जिसका नाम उसके साथ आया है, अहि के स्वभाव वाला प्रतीत होता है। इन्द्र ने दस्युओं को गहन अन्धकार के गर्त में ढकेल दिया था। दस्यु असुरों के समानधर्मी थे। अतः दस्यु असुर आदिम असुरों का घोतक है। उसने 'दस्यु' तथा 'असुर' अर्थ का भी बोध हो सकता है। ऐसा समझा जा सकता है कि यदि भारत के आदिम–मानव (आदिम–निवासी) 'दस्यु' संज्ञा से सम्बोधित होते थे, तो असुर जन भी किसी अन्य देश के आदि निवासी रह हो गें। वैदिक साहित्य में दास, दस्यु तथा असुर संज्ञाएँ अन्धाधुन्ध रूप में होता चला गया और साथ ही साथ उनके लिए "अहि" शब्द का प्रयोग भी मिलता चला गया। श्री एस. बी. केतकर ने अपने ग्रन्थ "ज्ञानकोश" में लिखा है कि दास और दस्यु शब्द प्रायः एक ही जन के लिए प्रसिद्ध हुआ है। शम्बर, शुष्ण, बृत्र तथा पित्रु के लिए 'दास' एवं 'दस्यु' आदि शब्दों से पुकारा गया है। प्रोफेसर केतकर का ऐसा मानना रहा है कि 'दस्यु' शब्द धीरे–धीरे लुप्त होता चला गया तथा वह परवर्ती साहित्य में नहीं मिलता। देव, दानव और असुरों का सिन्धुघाटी में गढ़ था। देव, दानव और असुर भी आगे चलकर 'क्षत्रिय' कहलाये एवं इनका प्रवजन सिन्धुघाटी में विस्तार के साथ में हुआ, जिनका उल्लेख रामायण, पुराण एवं महाभारत आदि ग्रन्थों में भी मिलता है।

भीमपुत्र घटोत्कच ने श्रीकृष्ण चन्द्र जी से अपने वर्ण–धर्म विषय में पूछा कि हे भगवन्! मैं कौन हूँ? मेरा नाम क्या है? तो वासुदेव श्री कृष्ण ने कहा कि हे वत्स! तुम "क्षत्रिय–वीर्य से उत्पन्न हुए हो, इसलिए क्षत्रिय हो, प्रथम देवी अर्थात् (शारदा माँ) की आराधना करो और विधि–पूर्वक अपना कर्म करो, जिससे बल प्राप्त होगा तथा पंचयज्ञ को मत छोड़ो।"

सर्ववर्णेपु तुल्यासु पत्नीष्वक्षयिोनिषु।

आनुलोम्येन सम्भूता जात्याज्ञेयास्तएव च ।।

अर्थात् चारों वर्णों में समान जाति वाली अक्षतयोनि वाली विवाहिता स्त्रियों में अनुलोम विधि से उत्पन्न हुए पुत्र पिता के नाम अथवा वंश के ही जाने जाते हैं। जैसे कि–

1.ऋषि श्रुतश्रवा पुत्र सोमश्रवा जो नागकन्या से उत्पन्न हुआ था। सोमश्रवा क्षत्रिय कहलाया।
2.ययाति पुत्र पुरु जो दानव कन्या शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न हुआ। पौरववंश का प्रसिद्ध क्षत्रिय कहलाया।
3.पाण्डव भीमसेन पुत्र घटोत्कच यक्ष–कन्या हिडिम्बा से उत्पन्न हुआ था। इसके पुत्र अन्जनपर्वा, बर्बरीक और मेघबाहन थे। यह हिडिम्बा कछारी राजा हिडिम्ब की बहिन थी। इससे सेन, राना, मघ, मेघ, बाहन, घरूका (सोमवंशी), राजंवशी, ठाकुर, कूच क्षत्रिय, बनाफर, कुरवंशी, राना करवंशी, घरवाल व घरोवाल, पाण्डवंशी, सोमवंशी, शूरवंशी आदि क्षत्रिय प्रसिद्ध हुए।
4.दुष्यन्त पुत्र भारत जो अप्सरा पुत्री शकुन्तला से उत्पन्न हुआ था। भरत चक्रवती राजा हुआ और इसके ही नाम से 'हिन्दुस्तान', भारतवर्ष कहलाया।
5.श्री कृष्ण पुत्र साम्ब जो ऋक्ष कन्या जाम्बवती से उत्पन्न हुआ था। साम्ब से समा हुए और आगे गुजरात के कच्छ सौराष्ट्र में जाड़ेजो क्षत्रियों के रूप में प्रसिद्ध हुए।

मनु–स्मृति में लिया है –

जतोनार्यामनार्ययामार्यादार्यो भवेद् गुणैः।
जातरत्च नार्यादार्यामनार्य इति निश्चयः।।

अर्थात आर्य पुरुष से हुई अनार्य स्त्री की सन्तान आर्य गुण सम्पन्न और अनार्य पुरुष से हुई आर्य स्त्री की सन्तान अनार्य गुणों से युक्त होगी। प्राचीन काल में वीर्य प्रधान माना जाता था। वीर्य प्रधान होने की वजह से पूर्व पृष्ठों में वर्णित लोग प्रसिद्ध क्षत्रिय कहलाये।

1.युधिष्ठिर पत्नी दैविका शैब्या से यौधेय?
2.भीम पत्नी बलंधराकाश्या से सव्रग, भीम पत्नी हिडिम्बा से घटोत्कच। भीम पत्नी बत्सला से भी पुत्र हुआ। उसके वंशधर सौराष्ट्र में पाये जाते हैं।
3.अर्जुन पत्नी सुभद्रा से अभिमन्यु। यह महाभारत युद्ध में चक्रब्यूह' भेदन के समय मारा गया था।
4.नकुल पत्नी करेणुमती चैद्या से निरमित्र।
5.सहदेव पत्नी द्युतिमती से सुहोत्र।

डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी ने लिखा है कि 'कुरुवंशिय राजाओं को जातकों में 'धनञजय', 'कोराब्य' तथा सुत–सोम नामों से विभूषित किया गया है। सुतसोम पाण्डव भीमसेन के पुत्र का नाम था। डॉ. राम कुमार राय लिखते हैं कि 'भीमसुत', 'भीमसूनु' 'भीमसेनिसुत', 'सुतसोम' इत्यादि नाम घटोत्कच के पर्यायवाची शब्द हैं। भीमसेनात्मज, 'भीमसेनि', भैमिक भीमसेन से 'सुतसोम' नामक क्षत्रिय राजकुमार था।

इस घटोत्कच वंश से सम्बन्धित एक क्षत्रिय घराना "घरूका क्षत्रिय' उत्तर–प्रदेश के विभिन्न जिलों जैसे कि गोण्डा, बहराइच, बस्ती, फैजाबाद, गोरखपुर, सीतापुर, पीलीभीत–स्टेट, बाराबंकी, इत्यादि में पायी जाती है। इस जाति के क्षत्रिय अपनी उत्पत्ति भीमसेन पुत्र घटोत्कच से होने का दावा करते हैं और हैं भी। भीमसेन का यही घटोत्कच वंश ही आगे चला। जो कि शुद्ध पाण्डववंशीय सोमवंशी कहलाया। बाकी भीमसेन के दोनों पुत्रों का वर्णन नहीं मिलता। भीमसेन और द्रौपदी से श्रुतसेन नामक जो पुत्र था, उसकी तो हत्या बाल्यकाल में ही द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा ने कर दी थी। वलन्धरा और भीमसेन से उत्पन्न सर्वग का भी वर्णन आगे नहीं मिलता। यह पुत्र भी महाभारत युद्ध में मारा गया होगा। भीमसेन ने बत्सला (श्री कृष्ण के बड़े भाई बलराम जी की पुत्री) से विवाह किया था मगर इससे कोई पुत्र पैदा हुआ या नहीं, इसका कोई विवरण नहीं मिलता। केवल घटोत्कच का ही वंश आगे चला। यही एक शुद्ध घराना है जो अपने को पाण्डववंशीय सोमवंशीय क्षत्रिय मानते हैं। भीमसेन के पुत्रों में से बहुत तो महाभारत युद्ध में समाप्त हो गये और जो बचे भी, उनके वंशजों का कोई स्पष्ट ब्यौरा नहीं मिलता। वे सोमवंशीय क्षत्रियों में घुल–मिल गये। विभिन्न स्थानों के सोमवंशीय क्षत्रियों के विभिन्न गोत्रों से यही ज्ञात होता है कि ये क्षत्रिय प्रजापति सोम के पश्चात् किसी एक राजा के घराने के नहीं, अपितु अलग–अलग राजाओं के खानदानी हैं। घराने तथा गोत्रों के अन्तर होने से सोमवंशियों का बेटी का व्यवहार सोमवंशियों में होता है। "क्षत्रियवंशावली" में सोमवंशीय क्षत्रियों का वर्णन चन्द्रवंशीय क्षत्रियों के रूप में मिलता है। इनका गोत्र–अत्रि, प्रवर–अत्रि, आत्रेय, शंतातप, वेद–यजुर्वेद, शाखा–वाजसनेयी, सूत्र–पारस्कर, गृह्यसूत्र, कुल देवी–महालक्ष्मी, नदी–त्रिवेणी है।

प्रोफेसर नन्दलाल डे के अनुसार साइयों–मंगोल लोग 'नाग' नाम से पुकारे जाने लगे। उन्होंने पुराणों एवं महाकाव्यों में वर्णित सप्त–पातालों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया। ऐसा माना जाता है कि 'असुर' विशेषण के समान 'अहि' शब्द भी लुप्त होता चला गया तथा उनका रूप "नाग" शब्द ने ले लिया। साथियन लोग मिश्र जाति के थे। सबसे पहले उन्होंने हूणों के साथ धुल–मिल गये और फिर कुछ अन्तरालों के बाद मंगालों में धुल–मिल गये और अन्त में उनके मिश्रित रूप का एक नया नाम "अल्पिनों–मंगोलॉययड" नामक जाति के रूप में अवतरित हुए। ऐतिहासिक युग में अनेक 'नाग' नामधारी या फिर नागों से उत्पन्न कई राजवंशो ने भारत–भूमि पर प्रतिष्ठित रूप से शासन भी किया था। आज भी ऐसे अनेक कुल हैं जो अपने को 'नागक्षत्रिय', 'नागवंशिय' भी कहते हैं। वर्मा तथा चीन के कई प्रदेशों की सभ्यता का श्रेय मगध के नागवंशियों को दिया जाता है। ईरान की खाड़ी के रास्ते उन्होंने बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष के साथ व्यापार किया था। बौद्ध साहित्य में समुद्र के नामों तथा पर्वतों के नागों की चर्चा जोरों पर मिलती है। विद्वान प्रोफेसर ए. बनर्जी के मत से मैं लेखक डॉ. चन्द्रिकासिंह सोमवंशी, रिसर्च स्कॉलर, सहमत हूँ। उनके अनुसार "असुर नाग अपने पूर्वीय अभियानों में सिन्धु घाटी, इक्षुमती नदी–तट पर स्थित कुरूक्षेत्र

गोमती, तटवर्त्ती नैभिष बन, गंगा के उत्तरी किनारों तथा निषाध गहवर पर्वत्तीय क्षेत्रों में हमेशा विचरण किया करते थे, प्रायः ऐसा माना जाता है कि उनके यह अभियान नदियों के रास्ते द्वारा ही होते थे। प्रारम्भ में असुर प्रभुसत्ता के प्रारम्भकर्त्ता उन्नायक नाग ही हैं। नागों के पतन के साथ भारत वर्ष में असुरों का व्यवस्थित आधिपत्य सदा–सदा के लिए समाप्त हो गया। लेकिन, कुछ असुर आगे चलकर महान चक्रवत्ती क्षत्रियों के रूप में जाने–पहचाने गये हैं।

विद्वान प्रो. नन्दलाल डे. के अनुसार साइको–मंगोल लोग 'नाग' नाम से पुकारे जाते थे। उन्होंने पुराणों और महाकाव्यों में उल्लेखित सात पातालों पर अधिकार कर लिया था। 'असुर' विशेषण के समान 'अहि' शब्द का लोप हो गया तथा उसकी जगह जन–मानस में 'नाग' शब्द ने अपना रूप ले लिया। पुरातत्वात्विक परिक्षणों के बाद विद्वान प्रो. एल. बी. कैनी ने अपने मत के उद्घोषण में कहा है कि नागों की पूजा बहुत ही बाद में विकसित हुई। प्रारम्भि युगों में नाग जाति के लोग सर्पों की पूजा नहीं करते थे। इसके विपरीत उनके शिव या महादेव की पूजा करते हुए उन्हें नागफण धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। नाग नाम की निष्पत्ति इस वजह से है कि वे जन लोग नागों को अपना राष्ट्रीय चिन्ह् मानते थे। आगे चलकर नागवंशीय क्षत्रियों ने भारत भूमि पर शासन भी किया है। असुरों के समान नाग भी प्रतिभा सम्पन्न जातियों के लोग थे। वर्मा तथा चीन के कई प्रदेशों की सभ्यताओं का श्रेय मगध के नाग जनों को दिया जाता रहा है। ईरान देश की विकतम खाड़ी द्वारा उन्होंने बहुत ही प्राचीन काल से भारतवर्ष में व्यापार का प्रारम्भ किया था। बौद्ध साहित्य में समुद्र के नागों तथा पर्वतों के कई नाग जन की गणना मिलती है। प्रो. मर्टिमर व्हीलर ने लिखा है कि "आधुनिक अनुसंधान के सन्दर्भ में यदि देखा जाय तो पता चलता है कि सैंधव सभ्यता का विस्तार पश्चिमी समुद्र तक कर दिया हैं। कम से कम 800 मील के विस्तृत दाईरे में समुद्र तट पर सभ्यता फली–फूली और फैली थी। सौराष्ट्र (काठियाबाढ़) में खंभात की खाड़ी के पूर्वी भाग तक हड़प्पीय सभ्यता के प्रायः (40) चालिस स्थलों का पता लगाया जा चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि हड़प्पीय–सभ्यता के परवर्त्ती चरण का प्रतिनिधितत्व नये स्थल करते हैं। मोहेनजोदड़ो से करीबन–करीबन 500 मील दक्षिणी–पूर्वी भाग में बहने वाली 'किमनदी' के मुहाने पर सैन्धव सभ्यता का धुर दक्षिणी स्थल में मिला है, जिसे भगतराव कहते हैं और दूसरे और स्थल भगतराव से कुछ आगे उत्तर में 'नर्मदा नदी' के मुहाने पर 'मेहगाँव तथा 'तिलोद' है। आगे प्रो. व्हीलर महोदय लिखते हैं कि सिन्धु घाटी के वनों (जंगलो) की अन्धाधुन्ध कटाई हड़प्पीय–सभ्यता की विनाश का कारण बनी। प्राचीन उज्जयिनी नगरी का महत्व मुख्यतः इस कारण हुआ कि 'भृगुकच्छ' (वर्त्तमान में 'भडौंच' यूनानियों का 'बेरीगाजा') बन्दरगाह के माध्यम से वह अन्तराष्ट्रीय व्यापार का एक विशाल केन्द्र बन गया था। पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र का मत है कि हड़प्पीय सभ्यता के जनक 'असुर' लोग ही थे। श्री जॉन मार्शल के अनुसार हड़प्पीय सभ्यता के जनक 'द्रविड़' लोग थे। इस मत के अनुमोदन में कुछ संशोधकों का यह कहना है कि सिन्धु सभ्यता के निर्माण में द्रविड़ लोगों के कनिष्ठ सहकमी 'मुड़ा' जाति के लोग थे। ज्यादातर लोग जॉन मार्शल के मत को ही समर्थन देते है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान नागों को 'सैन्धव सभ्यता' का जनक मानते हैं। एक मत के अनुसार 'द्रविण' लोग इस सभ्यता के जन्मदाता थे, दूसरे मतानुसार 'आर्य' लोग। मैं डॉ. सोमवंशी चन्द्रिकासिंह रिसर्च स्कॉलर अपने मत की पुष्टि में यह कहना चाहूँगा कि "ऊपर वर्णित पं. मिश्र का मत ठीक प्रतीत होता है। जिसकी पुष्टि डॉ. ए. बनर्जी ने भी अपने ग्रन्थ 'असुर इण्डिया' में भी की है। अतः हड़प्पीय सभ्यता के जनक असुर लोग ही थे। क्योंकि देवों व असुरों के एक ही मूल जनक प्रजापति कश्यप थे। दूसरी सोचनीय बात यह है कि असुर लोगों को 'पूर्व देव' के रूप में भी माना गया है जो किसी समय देव लोक के शासक भी थे। पौराणिक एवं वैदिक ग्रंथो से पता चलता है कि असुर प्रजाति के लोग 'यज्ञ' करते थे। भृगु और उनके वंशज असुरों के पुरोहित थे। देव लोक में 'देवों' व 'असुरों' दोनों की धार्मिक क्रियाओं को पुरोहित समान रूप से सम्पन्न करवाते थे।"

गंगा घाटी का पुरातत्व "अपनी शैशव अवस्था" में है ऐसा डॉ. व्हीलर महोदय मानता है। सिन्धु घाटी के विपरीत, जहाँ गड़े हुए अवशेषों की रक्षा वहाँ मीलों तक फैली हुई 'बालू' (बारीक रेत कण) ने की है, गंगा घाटी में पहले व आज भी पुरातात्विक अवशेष प्रायः बालू के ढ़ेर के तल दबते चले गये, और यह अत्यधिक वारिस सभ्यता के लिए घातक सिद्ध हुआ। अन्त में श्री सी. एल. फाब्री महोदय के शब्दों को देना चाहूँगा, उसके अनुसार "जिन्होंने अपने कुछ आदरणीय भारतीय मित्रों के इस दावे का कि भारतवर्ष सभ्यता का उद्गम स्थली रहा है।" का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि "तो भी सम्भतः मेरे भारतीय मित्र अन्त में सत्य से बहुत दूर नहीं हों गे। क्योंकि, सब कुछ होते हुए कौन जानता है कि भूमि (पृथ्वी) के नीचे क्या दबा पड़ा है।"33 सिन्धु घाटी की संस्कृति में मानव ने 'गुफा' से 'घट' तक की विकास यात्रा शुरू की। हड़प्पीय संस्कृति के बाद भारतीय शिल्प का उत्तोत्रर विकसित होती चली गयी। देव, सुर और असुरों को जीवन का कोई ढाँचा चाहिए, जिसके आस–पास अपना व्यवहार जमा सकें और इस प्रकार वे 'देव', 'सुर' और 'असुर' सिन्धु घाटी की संस्कृति में विचरण करते चले गये। एक ग्रंथ38 अनुसार देव और असुर दोनों ही प्रजापति के पुत्र थे – 'देवाश्च का असुराश्च प्रजापतेर्द्वयः पुत्राः आसात्।' ऐलवंशियों को प्रायः असुर कहा गया है। जैसा कि 'शतपतब्राह्मण' में व्याख्या दी गयी है। ऋग्वेद (7,8,4) में स्वयं 'पुरुराजा' को 'असुर राक्षस' कहा गया है। राजा पुरु से ही आगे चल कर 'पौरववंश' चला। चन्द्रवंश अर्थात् सोमवंश के बहुत से अन्य शासक, यथा – 'मधु', 'लवण', 'कंस', 'जरासंध', –असुर–दैत्य, दानव और राक्षस कहे गये हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयं श्री कृष्ण ऐलवंश के थे तथा जहाँ 'मधु' तथा 'लवण' श्रीकृष्ण के पूर्वज कहे गये हैं वहाँ 'कंस' को उनका 'मामा' बताया गया है। इसी तरह से घटोत्कच (पाण्डव भीमसेन–हिडिम्बा पुत्र=घटोत्कच) राक्षस होते हुए भी क्षत्रिय खुद कहलाया और आगे चल कर उसके वंशज भी क्षत्रिय कहलाये और उसकी माँ हिडिम्बा राक्षसी होते हुए भी हिमाचल–प्रदेश के 'कुल्लु–मनाली' की घाटी में "देवी" के रूप में मानी जाती है और पूजी भी जाती है जो कि जगत–विख्यात है।

सिन्धुघाटी की सभ्यता में भी मूर्तियों की भरमार है। खुदाई में ढेर सारी बैल, गाय, साँड, ऊँट, स्त्री–पुरुष इत्यादि की मूर्तियाँ पायी गयी हैं जिनका महत्व पुरातत्वशास्त्र की दृष्टि से काफी महत्व का है। खफ्रू संग्रहालय में असुर बनीपाल की खण्डित मूर्ति रखी हुई है। प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का एक बहुत बड़ा भण्डार मथुरा और लखनऊ संग्रहालय में भरा पड़ा है। सन् 1973 ई. में लखनऊ संग्रहालय पुरातत्वपत्रिका के 11–12 वे अंक सन् 1973 ई. में प्रकाशित काफी सामग्री पुरातत्व के मूर्तिविज्ञान से संबंध रखती है। केवल – 'कला कलों' के लिए विकसित हो सकती है और सुंदर कलाकृति की निर्मिति कलाकार का चरम लक्ष्य बन सकती है। कला के क्षेत्र में मनोहर कला कृति बनेगी, भले ही वह कलाकार का कोई संदेश जनता तक पहुँचाती रहे, परंतु मूर्तिविज्ञान के क्षेत्र में बनी हुई प्रतिमा या चर्चा केवल साधन होगी उपासना का तथा इसके माध्यम से ईष्ट देवता से संबंध स्थापित करने का साधन होगी। मूर्तिविज्ञान के अध्ययन में यदि हम देखें तो उत्तर –भारत की सूर्य प्रतिमाएँ ईरानी वेश में मिलती हैं तथा पैरों में ऊँचे जूते भी पहने रहती हैं, जबकि पूजा–अर्चना के समय जूतों का उपयोग बुरा नहीं माना जाता है। उत्तर–भारत के प्राचीन साहित्य में सूर्य के पैरों का दर्शन एवं अवैध बतलाया गया है। इसके विपरीत

दक्षिणी भारत की सूर्य–प्रतिमाओं में पैरों को ढ़कने की कोई आवश्यकता नहीं है। हिन्दुधर्म के अनुसार जूता पहेन कर पूजा करना वर्जित है।

उत्तर भारत में शिवमूर्तियों में त्रिशूलधारी शिव पाये जाते हैं तो दक्षिणी भारत में 'परशु–मृग–बरंकित मूर्तियाँ पाई जाती है। देश की भारतीय संस्कृत ने, समय की रफ्तार ने भी मूर्ति विज्ञान को खूब प्रभावित किया है। विष्णु के चार प्रमुख आयुधों में कमल का अस्तित्व गुप्तकाल तक नहीं था, वहाँ की अभय मुद्रा। उसके बाद कुछ समय के लिए आया फल और फल के बाद कमल। मध्यकाल में कमल के फूल ने अपनी एक ऐसी जगह बना ली कि उसके साथ शंख, चक्र एवं गदा को आधार मान कर केशव आदि के चौबिस (24) रूपों की कल्पना की गयी और विशेषता बंगाल में 'विष्णु पट्टों' को काफी लोक प्रियता मिली। विष्णु के अलग–अलग रूपों ने तो प्राचीन मूर्तिविज्ञान में एक तहलका मचा दिया। जितनी मूर्तियाँ विष्णु की प्राचीन काल में अलग–अलग शासकों के समय में बनी उतनी और किसी देवी–देवता की मूर्तियाँ नहीं पायी जाती। भारत वर्ष के कोन–कोने में विष्णु भगवान की शेषनाग की शय्या पर आसीन एवं गरूण पर आसीन विशाल समुद्र के बीच शेषनाग के फण के नीचे निद्रा में मग्न भगवान् विष्णु की मूर्ति के साथ ही साथ जगत माता माँ भगवती भवानी लक्ष्मी की भी मूर्तियाँ भी पायी जाती है।

प्राचीन साहित्य में विष्णु की आठ से लेकर चौबिस (24) अवतारों का वर्णन, प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलती है। दस अवतारों को अधिक महत्वा मिली तथा उसी के अनुसार मूर्तियों का अंकन होता रहा। कभी–कभी तो कृष्ण को आठवाँ अवतार न मानकर बलराम या संकर्षण को मिलता रहा। गुप्तकाल में आते–आते शंकर के पुत्र कार्तिकेय तथा बाराह की उपासना काफी लोकप्रिय हो चुकी थी। लेकिन बाद में वह धीरे–धीरे लुप्त होती चली गयी। गुप्तकाल की अपेक्षा गणेश की मूर्ति मध्यकाल में ज्यादा लोकप्रिय हो गयी। गोमुख, यक्ष, अम्बिका, वसुदेव, बलभद्र आदि जैन–शासन देव और देवताओं जो तीर्थकरों के सेवक के रूप में अंकित रहते हैं, ब्राह्मण–धर्म के देवताओं से मेल खाते हैं। चिता के भस्म को तथा बाघ के खाल को पहने हुए वैराग्य मूर्ति शिव को मध्यकाल में वैष्णवों की देखा देखी विभिन्न प्रकार के अंलकारों से मण्डित किया है। शैवों की नकल करने के लिए वैष्णवों ने अपने यहाँ विष्णु की आलिगन–मूर्ति कल्याणमुद्रा मूर्तियों का जन्म दिया। शैवों और वैष्णवों में शिव और विष्णु की एकरूपता दिखलाकर मैत्री भावना को उदय करने के लिए हरि–हर मूर्ति का निर्माण हुआ।

विष्णु का श्रीवत्सचिन्ह् एवं शिव कौंती लाकष्ठ क्रमशः महाभारत की एक कन्या के अनुसार दोनों देवताओं के परस्पर विरोधोत्तर मैत्री सूचक माने जाते हैं। मध्यकाल तक पहुँचते–पहुँचते ब्राह्मण धर्म में प्रमुख रूप से शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और गणपत्य सम्प्रदायों का उदभव हुआ। तव सामंजस्य के प्रेमी लोगों ने पंचदेवों की उपासना पर बल दिया। आगे चलकर इस प्रकार के शिवलिंगों का निर्माण होने लगा जो कि शिवलिंग के चारों ओर सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा अंकित रहने लगे। इस प्रकार से कई मूर्तियों अर्थात प्रतिमाओं में सूर्य, कार्तिकेय, विष्णु, बाराह, हरिहर, शिव–पार्वती, लक्ष्मी आदि का निर्माण अधिक मात्रा में होन लगा और उन्हें मंदिरों, मठों, शिवालयों, देवालयों आदि में स्थापित किया जाने लगा। सिंधुघाटी के सभ्यता से प्राचीन साहित्य और वैदिक साहित्य के दर्शन होते हैं। सिन्धुघाटी की संस्कृति में विचरते हुए लोगों के द्वारा निर्मित, सिंधु सभ्यता से मिले हुए तमाम लिंगाकार पाषाण, जिनका संबंध लिंग पूजा से माना जाता रहा है। चपटे छिंद्रयुक्त वर्तुलाकर जो पत्थर मिले हैं उनमें स्त्रियों की योगीपीठ की कल्पना भी की जा सकती है। मिट्टी की असंख्य मुहरें, जिन पर मानव आकृतियाँ बनी हुई हैं और जिन्हें मैके महोदय ने अनुमानतः गृह–देवताओं का रूप कहा है। पाणिनी ने भी कई प्राचीन प्रकार की प्राचीन मूर्तियों का भी जिक्र किया हैं उसका समय मोटे रूप में यदि माना जाय तो ईस्वी पूर्व पाँचवी शती के मध्य भाग में रखा जा सकता है। यह विम्बसार और कौटिल्य के समय में हुआ। कच्छ की पवित्र पावन भूमि में कन्थकोट के किले के अंदर सूर्य मंदिर कन्थकोट का जो अब खण्डहर रूप में दिखाई देता है वहीं पर एक विशाल शिवलिंग भी स्थापित है जो कि शिव लिंग की कला में अपना एक अनौखा योगदान रखता है। केरा कुन्दन पुर के शिव मंदिर के ताखों में भी असंख्य मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं जो कि अर्द्धनग्न रूप में है। प्राचीन मूर्तियों के लेखा–जोखा में नग्नता का प्राधान था। भुज से 20 कि. मी. दक्षिण की तरफ केराकुन्दनपुर गाँव में भुज के राजा राव पुँवारा का बनवाया हुआ 10वीं शदी का विशाल शिवमंदिर के ताखों में उत्कीर्ण देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बेजोड़ है। अब इस मंदिर को पुरातत्व विभाग ने अपने अन्डर में ले लिया है। कच्छ में केराकुन्दनपुर, कोटाय, भद्रेश्वर का शिवमन्दिर, अन्जार का शिवमंदिर, भुज के शरद बाग में स्थित छोटा सा शिवमंदिर इत्यादि में मूर्तिकला के चित्रों की भरमार है। कच्छ की मूर्तिकला, खजुराहों, उड़ीसा, मदुरायी इत्यादि की मूर्तिकलाओं से टक्कर लेती है। मूर्तिकला के क्षेत्र में भी कच्छ का योगदान बेजोड़ है। शिवालयों में ढ़ेर सारे देवी–देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं जो कि देखने में सजीव लगती हैं। सिन्धुघाटी की संस्कृति में विचरते हुए देव, दानच एवं असुरों ने अपनी एक अनौखी लीला खेली, जो कि भारतीय साहित्य में मिलती है। ऐलवंशियों सोमवंशियों, चन्द्रवंशियों, के काफी राजे असुर और राक्षस कहे गये हैं। ऐशिरिया के राजा बनीपाल को असुरबनीपाल के नाम से पुकारा जाता रहा है।

---

1. रिपोर्ट – श्री रमेश पन्चोली, सम्पादक–श्री पुष्पेन्द्र बैद्य,
2. 2म. प्र. के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ ठल मोरेश्वर गं. दिक्षित, निवेदन से।
3. India T.V. Channel, Programme, Dated : 11/12/2010, प्राचीन भारत का इतिहास ठल डॉ. के. एल. खुराना एवं आर. सी. शर्मा, पृ. 17, प्रथम संस्करण 1993, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, अस्पताल रोड़, आगरा–3. Time 3:00 PM.
4. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता By डॉ. दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी पृ. 92 तीसरा संशोधित संस्करण, 1998ए (ISSB:81-7178-090-3) राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली– 110032.
5. Ancient Geography of India, By, Dr. Curnigham Alexender, (1963), पृ. 240 और भारतीय आद्य इतिहास का अध्ययन [Studies in the proto-History of India] By पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्री, अनुवादक तथा अध्यक्ष प्राचीन इतिहास तथा संस्कृति विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (M.P.) पृ. 51, मध्य–प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण 1972–73 ई.
6. भारतीय आद्य इतिहास का अध्ययन By पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र, अनु. कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ. 51.
7. वहीं पृ. 51.
8. टसुर इण्डिया By डॉ. ए. बैनर्जी शास्त्री, पृ. 13.

9.दे. सं. असु. सि. में प्रव्र, पृ. 53–54.
10. ऋग्वेद एण्ड दि इन्डसबैली सिबिलाइजेशन पृ. 139–140.
11. हिस्ट्री ऑफ सेन्ट्रल एशिया , पृ. 4.
12. सोबियत एन्थ्रोपॉलॉजी, एण्ड आर्कियोलॉजी, जिल्द–2, अंक–4 (सन् 1964 ई.) पृ. 18.
13. दि जिओग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्शयण्ट एण्ड मोटिबल इण्डिया, पृ. 167–168.
14. ऐंश्यण्ट पाटलिपुत्र बम्बई शाखा की रॉयल एशियाटिक सोसायटी का शोधपत्र, जिल्द 24, (सन् 1916–1916 ई.) पृ. 519–521 तक)
15.पद्म–पुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय–6.
16 पुरणोत्तर महाभारत कालीन इतिहास ठल डॉ. कुँवरव्यास शिष्य, पृ. 32, और 33.
17. हरिवंश पुराण, अध्याय–262
18. The Geographical Dicsnory of Ancient and Medieval India By Prof. Dr. Nandlal Day (Ms), पृ. 167.68
19. ऋग्वेद एण्ड द इण्डस बैली सिबिलाइजेशन ठल डॉ. बुद्ध प्रकाश, पृ. 139–140.
20. प्री. हिस्ट्री एण्ड विगिंनिंग ऑफ सिविलाइजेशन पृ. 222.
21. वही पृ. 255.
22. Pue-Historic India, By Piggat stuart Page 153-154. और भारतीय आद्य इतिहास का अध्ययन ठल पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र, पृ. 59 और आगे।
23. Pue-Historic India, By Piggat Stuart Page 157-158
24.Journal of Bihar and Orissa Research society ftYn 28, अंक–1 (1982), पृ. 61–62.
25.ऋग्वेद 7, 6, 3, 5,; 34, 6–7, 8, 66, 31–33; 6, 51, 14, 10,6.
26.मनुस्मृति, अंक 10, श्लो–5 में लिखा है.
27. प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, By डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी, पृ. 104.
28. महासुतसोम जातक, नं. 537.
29. महाभारत कोश, पृ. 256.
30.पुराणों में प्राग्महाभारत कालीन इतिहास, By डॉ. कुँवरलाल व्यास शिष्य, प्रथम संस्करण, 1990, पृ. 571 और आगे। इतिहास विद्या प्रकाशन दिल्ली.
31. क्षत्रिय वंश भास्कर के पाँचवे संस्करण के पृ. 136.
32. दि नागज इन दि मगध, Journal of Bihar and Orissa Research society जि. 28 भाग–2, (1942 ई.) पृ. 168.
33.टसुर इण्डिया, By ए. बनर्जी शास्त्री, पृ. 31.
34. The Nagas of Magdh, Journal of Bihar and Orissa Research Society. Ft- 28, भाग–2 (1942 ई. सन) पृ. 178.
35. The Indus Civilization By prof. Martima Wheelor Page 2.
36. भारतीय आद्य इतिहास का अध्ययन, पृ. 72.
37. वही पृ. 51.
38. तांड्य ब्राह्मध्स और भारतीय आद्य इतिहास का अध्ययन, ठल पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र, अनु. प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी , पृ. 48
39. महाभारत, शांतिपर्व, उपर, 134, पृ. 4377.
40. इण्डियन कल्चर, जिन्द–3, (सन् 1936, 1937 ई.) पृ. 672.0
41. प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान ठल डॉ. नीलकन्ठ पुरुषोत्तम जोशी कृत, पृ. 3, प्रथम संस्करण 1977, शकास्द 1899, विक्रमास्द 2034 बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना – 800 004 (बिहार)
42. प्रायाग सं., 392 ए सजों से प्राप्त उमामहेश्वर, 291 हरगौरी, खजुराले.
43. क्लेकर ना. द., काशी की प्राचीन देवी–मूर्तियाँ, विष्णु "आज", वाराणसी, 24 अगस्त, 1958, रे. वि. 5.
44. प्रायाग सं. सं. 652 माणिकपुर से प्राप्त, वहाँ से शिव को कल्याणसुंदर–मूर्ति (प्रयाग सं., सं.,) की प्राप्त हुई है।
45. महाभारत, शान्तिपर्व, 342–134, पृ. 4377.
46.CAMG, P-14, No.1, P.19, No22, Indian Museum, Calcutta, No-!, 25168.
47.Allahabad Museum, No. 292.
48. Muhenjodaro and Induj Civilization By Marshall, Vol. 1St Page 59.
49. Further Excavations at Mohenjodari By Mackay E. Vol. 1st Page 258-259
50. पणिनिकालीन भारतवर्ष By अग्रवाल, वासुदेव शरण बनारस, सं. 2012, पृ. 476 – 480 और आगे पृ. 339–351.
51. M.S. University of Baroda, studies in Museology, Vol. XLIII and XLIV, 2010 and 2011 A.D.

# Publish Research Article
# International Level Multidisciplinary Research Journal
# For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Book Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

## Associated and Indexed,India

- International Scientific Journal Consortium
- OPEN J-GATE

## Associated and Indexed,USA

- Google Scholar
- EBSCO
- DOAJ
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database
- Directory Of Research Journal Indexing

Indian Streams Research Journal
258/34 Raviwar Peth Solapur-413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com
Website : www.isrj.net